Jai Maa Saraswati Gyandayini ISSN: 2454-8367
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer - reviewed, Open Accessed & Indexed)
Web: www.jmsjournals.in; Email: jmsjournals.in@gmail.com
Vol.6, Issue-II, Oct. 2020

पाल राजवंश का परिचय तथा पुरातात्विक साक्ष्यः एक समीक्षात्मक अध्ययन
(Introduction and Archaeological Evidence of Pala Dynasty: A Critical Study)

Medhavi Krishna
Ph.d. Scholar
Archaeology Department, Delhi University, Delhi
Email: krishnamedhavi1@gmail.com
Orcid: https://orcid.org/0000-0001-9914-8360
DOI: https://doi.org/10.53724/jmsg/v6n2.09

Dr. Ashish Kumar
Research Guid & Assistant Professor
Archaeology Department,
Deshbandhu College, Delhi University, Delhi
Email: 80ashishkr@gmail.com
Orcid: https://orcid.org/0000-0002-2108-064X

संक्षिप्त रूप

ऐतिहासिक साक्ष्य या पुरातात्विक साक्ष्य, इतिहास के पन्नों की ओर ले जाते है, जो विगत घटनाओं का चित्रण जीवंत अस्तित्व के रूप में कराता है। इतिहास वेत्ता इस सभी श्रोतों से प्राप्त साक्ष्यों का मूल्यांकन कर उसी प्रकार निष्कर्ष निकालते हैं, जिस प्रकार प्रयोगशाला में वैज्ञानिक निकालते हैं। कालक्रम से इतिहास जानने के अनेक श्रोत हैं, जैसे अनैतिहासिक ग्रंथ, विदेशी यात्रियों का विवरण एवं पुरातात्विक साक्ष्य आदि। इन सभी श्रोतों में पुरातात्विक साक्ष्यों को सर्वाधिक प्रमाणिक माना जा सकता है। पुरातात्विक साक्ष्य जैसे, मूर्तियॉ, ताम्रपत्रों, मोहरों एवं सिक्कों आदि से उस काल की न केवल जानकारी प्राप्त होती है, बल्कि हमें उस काल की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सम्पूर्ण सभ्यता के बारे में भी पता चलता है। इसका एक उदाहरण हमें सिन्धु घाटी सभ्यता के रूप में मिलती है। इस तरह हम कह सकते हैं कि इतिहास की विस्तृत जानकारी के लिए पुरातात्विक स्त्रोतों का विशेष महत्व होता हैं। इसके अन्तर्गत ताम्रपत्र, शिलालेख एवं अभिलेख आदि आते हैं। इतिहास की इन सभी सामाग्री में अभिलेखों का अपना एक विशेष महत्व होता है। इन्हें समय–समय पर अनेक राजाओं ने अपने–अपने ढंग से लिखवाया था। वैसे तो अभिलेखो की संख्या अनेक हैं, किन्तु कोई भी अभिलेख अशोक के पहले का नहीं है। अशोक एवं समुद्रगुप्त जैसे महान शासकों के विषय में हमें अधिकांश जानकारी इनके अभिलेखों से ही मिलते हैं। इस शोध पत्र के माध्यम ये पाल राजवंश का परिचय तथा पुरातात्विक साक्ष्यों का एक समीक्षात्मक अध्ययन करना है।

शब्दकुंजीः पाल राजवंश, ऐतिहासिक साक्ष्य या पुरातात्विक साक्ष्य, पुरातात्विक स्त्रोत, ताम्र अभिलेख एवं मुद्रा अभिलेख, संस्कृति एवं सभ्यता विकास इत्यादि।

अभिलेख आठ प्रकार के होते है; जैसे शिलालेख, स्तंभ लेख, गुहा लेख, मूर्ति लेख, प्रस्तर अभिलेख, पात्र अभिलेख, ताम्र अभिलेख, एवं मुद्रा अभिलेख आदि। अभिलेखों से तिथि क्रम का विश्वसनीय ज्ञान, राजनीतिक घटना, सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थाओं तथा शासकों के पारस्परिक संबंधों के बारे में महत्वपूर्ण एवं सही जानकारी प्राप्त होती हैं। पाटलीपुत्र, मगध आदि स्थानों पर मौर्य सम्राटों के तत्पश्चात् गुप्त सम्राटों की राजधानी रहा। मौर्य काल में जो संस्कृति एवं सभ्यता विकसित हुई वह गुप्तकाल मे अपने चरमोत्कर्ष पर थी। इसके पश्चात् पाल कालीन शासकों का भी ये केन्द्र स्थल रहा। उनके काल में भी अनेको मठ और बिहार का निर्माण करवाया गया। उस काल के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय विक्रमशिला, नालंदा, ओदन्तपुरी, फूलहरी आदि के अतिरिक्त कई मठ विभिन्न स्थानों पर निर्मित किये गये। पुरातत्व की दृष्टि से भागलपुर में खालिमपुर अभिलेख, देवपाल का मुंगेर अभिलेख, नारायणपाल का बादल स्तंभ लेख, मुजफ्फरपुर से प्राप्त अभिलेख, दरभंगा, सहरसा, भागीरथपुर, सारन, कीटा, मंगलगढ़, महिपाल का वाणगढ़ अभिलेख, इसके अतिरिक्त पाल काल में बोध गया, एन्टीचौक, राजगीर आदि अनेक महत्वपूर्ण स्थान हैं।

यदि हम ध्यान से समीक्षा करे तो पाते है कि पूरे बिहार राज्य में गुप्त कालीन तथा पाल कालीन अनेक शिलालेख मिले है और इनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही हैं।

पुरातत्व विभागीय खुदाई की दृष्टि से अनेकों स्थल ध्यान देने योग्य है जो कि निम्नलिखित हैं– सहरसा जनपद में अनेक स्थल मिले हैं, जहॉ से पाल कालीन प्राचीन वस्तुऐं समय–समय पर प्राप्त हुई है। इसी प्रकार श्रीनगर में एक दुर्ग मिला है, जहॉ से अनेक पाल कालीन मूर्तियॉ मिली हैं।[1] पाल शासक धर्मपाल ने वारेन्द्री (उत्तरी बंगाल) में और सोमपुरी में भी एक बिहार की स्थापना की थी जो राजशाही जिले में स्थित है।

पाल वंश का परिचयः–

इस वंश की स्थपना संबंधी ऐतिहासिक साक्ष्य, अभिलेख तथा तत्कालीन साहित्य के रूप में प्राप्त हैं। धर्मपाल के खालिमपुर अभिलेख से यह जानकारी प्राप्त होते है कि तत्कालीन राजनीतिक अव्यवस्था मात्स्य–न्याय[1] की थी। 'मात्स्यन्याय' का तात्पर्य यह है कि पाल वंश के स्थापना हो जाने के पूर्व बंगाल में शासन नाम की कोई वस्तु नहीं थी और प्रत्येक सबल, निर्बलों को उसी प्रकार समाप्त करने लगा था जैसे बड़ी मछलियों छोटी मछलियों को खा जाती हैं। लेकिन इस अव्यवस्था से मुक्ति दिलाने हेतु प्रकृतियों ने 'गोपाल' को राजा बनाया। यहॉ 'प्रकृति' का अर्थ 'जनता' से हो सकता है जिसके द्वारा गोपाल को लक्ष्मी की बांह पकड़ाई गई अर्थात् उसे राजा चुना गया, जिससे उस र्दुव्यवस्था को अन्त किया जा सके। कुछ इतिहासकार के द्वारा ऐसा ही माना जाता हैं। खालिमपुर अभिलेख में गोपाल के पिता वप्पट तथा दादा का नाम दयित विष्णु अंकित हैं। अन्यत्र इनका कहीं जिक्र नहीं है। पाल वंश के संस्थापक गोपाल के जन्म सम्बन्धी अनेक जनश्रुतियॉ कथायें बौद्ध ग्रंथों में मिलती हैं। 'तारानाथ' गोपाल की माता को क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ बताता हैं, जिसने वृक्ष देवता के संयोग से पुण्ड्रवर्द्धन में उसे जन्म दिया था।[2]

एक अन्य तिब्बती इतिहासकार बुस्तोन भी उसका जन्म कुछ इसी प्रकार हुआ बताता हैं। बौद्ध ग्रन्थ 'अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञा पारमिता' की हरिभद्र द्वारा लिखी टीका में धर्मपाल (गोपाल का पुत्र) को राजभटादिवंश पतित कहा गया हैं। खालिमपुर अभिलेख में धर्मपाल की माता देद्दा देवी को 'भद्रात्मजा' कहा गया है। जिसके आधार पर इतिहासकार रमेशचन्द्र मजूमदार ने उसे समतट पर शासन करने वाले वंश में उत्पन्न हुआ बताते है। 'राज

भटादिवंश पतित में पतित शब्द पालों के निम्नवंषी होने की ओर संकेत करता हैं। आर्य मन्जुश्री मूल कल्प में गोपाल को दास जीवन अर्थात् दास कुल का माना गया है। यह सब बातें इस ओर इंगित करता है कि पाल वंशी राजा अभिजात्य वर्गी न होने के कारण उनका बौद्ध धर्म की ओर झुकाव हो, जहॉ जातिभेद तथा उंच–नीच का भेदभाव नहीं था। यद्यपि पाल वंश के नरेश निम्न वर्गीय कुल में उत्पन्न हुए हैं फिर भी शक्ति सम्पन्न होने के कारण उन्हे क्षेत्रिय ही माना गया। यही कारण है कि उनके वैवाहिक सम्बन्ध राष्ट्रकुटों और हैहय वंश जैसे शक्ति सम्पन्न तथा सम्मानित राजकुलों में सम्पन्न हुआ।

पालों के मूल स्थान के बारे में भी विद्वान एक मत प्रतीत नहीं होते हैं। तारानाथ का कथन है कि गोपाल का जन्म पुण्यवर्द्धन में हुआ और बंगाल (भगांल) का राजा बना। आर.सी. मजूमदार पालों का मुल स्थान वारेन्द्री होने पर भी मूल राज पूर्वी और दक्षिणी बंगाल में होने की बात करते हैं।

बुस्तोन भी नालन्दा बिहार का जिक्र करता हैं। इसके आधार पर कुछ इतिहासकार मगध पर भी उसका अधिकार मानते हैं। निर्विवादित रूप से इतना कहा जा सकता है कि अव्यवस्था तथा अराजकता की स्थिति समाप्त कर गोपाल ने पाल राज्य की स्थापना की थी।

गोपाल के उत्तराधिकारी तथा वंश वृक्ष

गोपाल (लगभग 750 से 770 ई0)

धर्मपाल (लगभग 770 से 810 ई0)

त्रिभुवन पाल
युवराज (खालिमपुर अभिलेख)

देवपाल (810 से 850 ई0, धर्मपाल तथा
राष्ट्रकूट राजा की पुत्री 'रण्णा देवी' का पुत्र)

विग्रहपाल (850 से 854 ई0)

नारायणपाल (854 से 915 ई0)

भाग्य देवी + राज्यपाल (915 से 940 ई0)
(राष्ट्रकूट)

गोपाल द्वितीय (950 से 960 ई0)

विग्रहपाल द्वितीय (960 से 988 ई0)

प्रथम महीपाल (988 से 1038 ई0)

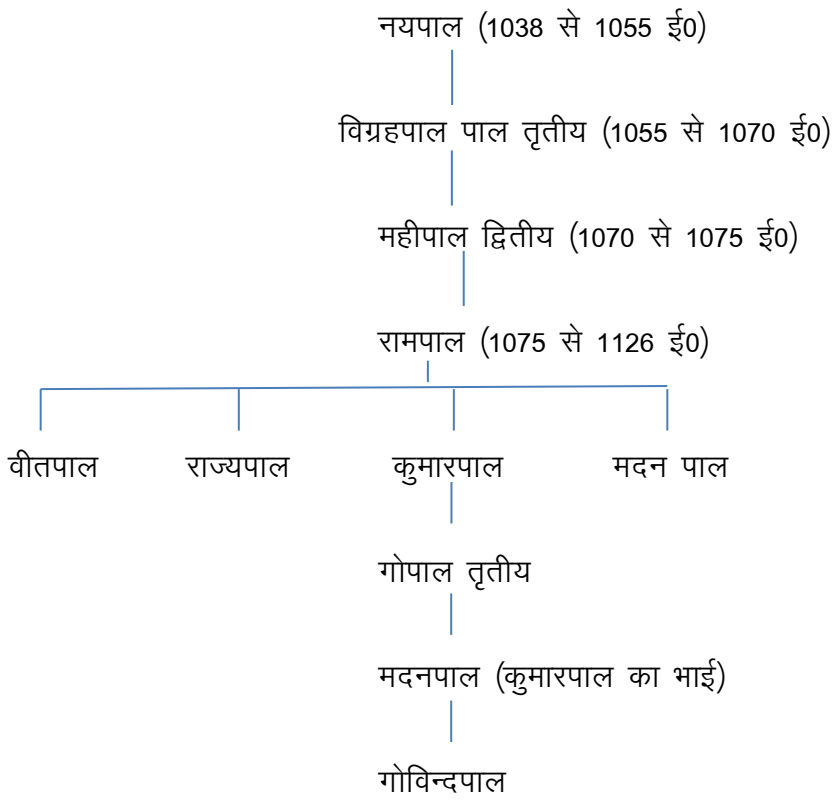

पाल वंश के संस्थापक 'गोपाल' को कहा जाता है। लेकिन पाल वंश का सबसे बड़ा सम्राट 'गोपाल' का पुत्र 'धर्मपाल' था। इसने 770 ई0 से 810 ई0 तक शासन किया था। इतिहासकारों के अनुसार पाल वंशी राजाओं ने लगभग 400 वर्षो तक बंगाल और बिहार पर शासन किया किन्तु गोपाल के उतराधिकारी 'धर्मपाल' और उसके पुत्र 'देवपाल' का प्रभाव क्षेत्र उत्तर भारम में दूर–दूर तक रहा। 'कन्नौज' के प्रभुत्व के लिए भी इसी शासनकाल में संघर्ष आरम्भ हुआ था। जिसे 'पाल–प्रतिहार–राष्ट्रकुट' का संघर्ष कहा जाता है। यह संघर्ष लगभग 100–150 वर्षो तक चलता रहा। संघर्ष का मूल कारण क्या था ? इस विषय में इतिहासकारों के अलग–अलग मत हैं। डॉ0 मजूमदार साम्राज्य स्थापना को ही संघर्ष का मूल कारण मानते हैं। डॉ0 वि0प्र0 सिन्हा आर्थिक कारणों को प्रमुखता देते हैं। गंगा यमुना द्वाब की धनधान्य बहुलता और कन्नौज से होकर सभी दिशाओं को जाने वाली व्यापार मार्गो पर अधिकार की लालासा, इन दोनों ही कारणों से आक्रमणों प्रत्याक्रमणों का क्रम दीर्घ अवधि तक चलता रहा। इस समय के शासकों की यह मान्यता थी कि जो कन्नौज का शासक होगा, उसे सम्पर्ण उत्तरी भारत के सम्राट के रूप में स्वीकार कर लिया जाएगा।

धर्मपाल बौद्ध धर्मावलम्बी था। धर्मपाल को पाल वंश का महत्वांकाक्षी सम्राट भी कहा जाता है। अपने पिता से उसने सुदृढ़ राज्य प्राप्त किया और उसके विस्तार के लिए आजीवन प्रत्यनशील रहा। यद्यपि उसे प्रतिहार राजा वत्सराज तथा नागभट्ट से और फिर राष्ट्रकूट ध्रुव से पराजित होना पड़ा, किन्तु हताश न होकर धर्मपाल उत्तर भारत में अपने प्रभाव विस्तार के लिए सतत् प्रयासरत रहा। धर्मपाल एक उत्साही बौद्ध समर्थक था। उसने काफी मठ व बौद्ध विहार बनवाये। उसके शिलालेखों में उसे परमसौगात कहा गया है। उसने विक्रमशिला व सोमपुरी प्रसिद्ध

विहारों की स्थापना की। भागलपुर जिले में स्थित विक्रमशिला विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया था। इससे पहले 'धर्मपाल का पिता 'गोपाल' ने औदंतपुरी (बिहार शरीफ) में एक मठ तथा विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया था।

धर्मपाल के बाद उसका पुत्र 'देवपाल' गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता के अनुसार विस्तार वादी नीति का अनुसरण किया। देवपाल के सम्बन्ध में नालन्दा के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि इसने राजगृह के विहारों के लिए चार और गया के विहारों के लिए एक अर्थात् पॉच गॉव दान में दिये थे। उसने जावा के शासक शैलेन्द्र के आग्रह पर ऐसा किया। इसी के काल में अरब सुलेमान आया था। देवपाल ने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाई थी। उसने पूवोर्त्तर में प्राज्योंतिषपुर (असम), उत्तर में नेपाल, पूर्वी तट पर उड़ीसा तक विस्तार किया। 'कन्नौज' के त्रिकोणीय संघर्ष में देवपाल ने भी भाग लिया था। इतिहासकारों के मत में देवपाल का संबंध में दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ मैंत्रीपूर्ण रहे थे। धर्मपाल के एक भाई का नाम वाक्यपाल था। वाक्यपाल के पुत्र का नाम जयपाल था, जिसका पुत्र प्रथम विग्रहपाल था। विग्रहपाल के भाई अथवा उसके वंश के किसी अमृतपाल नामक व्यक्ति ने जयपाल की स्मृति में 'सारणनाथ' में दस चैत्यों का निर्माण कराया था। इस बात के प्रमाण का एक शिलालेख सारनाथ में मिला था, जिसकी संख्या सारनाथ के संग्रहालय में डी0 (एफ0) 59 है। उसमें लिखा है :–

विश्वपालः। दश चैत्यांस्तु यत् पुणयं कारयित्वाज्जित्त मया (।) सर्व लोको मवे । [त्रेन]

सर्व्वज्ञः करूणयमयः।। श्री जयपाल एतानुधिश्य कारितममृतपाले [न]।

पाल राजाओं में नारायणपाल (845 ई0–915 ई0) के बाद राजपाल का शासन आरंभ हुआ। इसके पिता के समय में प्रतिहारों ने इसके राज्य की जो भूमि ले ली थी उसे इसने पुनः अपने बाहु–बल से प्राप्त कर लिया। श्री भगवतशरण उपाध्याय ने राजपाल का काल 912/915 से 936/940 माना है। राजपाल के बाद द्वितीय विग्रहपाल का शासन मगध पर हुआ। जिसका शासन 960 ई0 से 988 ई 0 तक माना जाता है। पाल वंश में विग्रहपाल द्वितीय के बाद महीपाल नामक राजा सामर्थ्यवान् हुआ। यद्यपि इसे भी शत्रुओं से भयंकर लोहा लेना पड़ा, फिर भी इसने अपने शत्रुओं को पूर्व के भाग पर अधिकार नहीं करने दिया। सारनाथ के शिलालेख से तो प्रमाणित होता है कि काशी भी इसके अधीन थी। बौद्धधर्म में इसकी भी पूर्ण आस्था थी, जिसके चलते इसके बौद्धधर्म के भक्त भाईयों ने सारनाथ में 'धर्मराजिकास्तूप' और 'सांगधर्मचक' का संस्काट कराया था। उनके जीर्णोद्धार कराने के साथ में ही गन्धकुटी को भी फिर से बनवाया था। महीपाल ने श्रद्धायुक्त होकर अपने भाईयों की इस कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए शिलालेख लिखवाकर सारनाथ में स्थापित कराया था। वह शिलालेख आज भी सारनाथ के संग्रहालय में सुरक्षित हैं, जिसकी संख्या बी0 (सी0) आई है। इस लेख से स्पष्ट पता चलता है कि महीपाल ब्राहम्ण धर्म के साथ बौद्धधर्म के प्रति भी श्रद्धालु था और काशी के मन्दिरों में ध्वज, चित्र, घण्टा आदि का भी प्रबन्ध कराया था। इसी लेख से दूसरी बात यह भी प्रमाणित होती है कि सन् 1026 ई0 के आस–पास काशी पर भी इसका शासन था। यहॉ इस लेख को लिखना प्रसांगिक होगा।

ओं नमो बुद्धाय

वरान शी (सी) सरस्थां गुरव श्रीवामशशिपदाष्जं

आराध्य नमित भूपतिशिगेरू हैः शैवालाधींश इ (ई)

शानचित्रघण्टादिकीर्तिरत्नशतानि यो गौडाधिपो
महीपाल, काश्यां श्रीमानकार (यत्)।
सफलीकृत पाण्डित्यौ बोधावा विनिवर्त्तिनौं।
तौ धर्म्मराजिकां साडंग धर्म्मचक्र पुननर्वं।।
कृतवन्तौ च नवीनामष्ट महास्थान शैलगन्धकुरी।
एतां श्री स्थिरपालों वसन्त पालोडनुजः श्रीमान्।।

इससे स्पष्ट है कि महीपाल के गुरू वाराणसी में रहते थे, जिसका नाम 'वामराशि' था और उसकी प्रेरणा से ही काशी के मन्दिरों में महीपाल ने ध्वज, चित्र, घण्टा आदि लगवाये थे। इसके दो भाई स्थिरपाल और वसन्तपाल ने, जो पूर्ण बौद्ध थे, सारनाथ के बौद्ध स्थानों का जीर्णोद्धार कराया था, जिनके यश की चिरस्थिति के लिए महीपाल ने शिलालेख लिखवाया।

11वीं सदी में महीपाल प्रथम नले 988 ई0 से 1038 ई0 तक शासन चला। महीपाल प्रथम को पाल वंशृ का द्वितीय संस्थापक कहा जाता है। उसने समस्त बंगाल और मगध पर शासन किया। महीपाल के बाद पाल वंशीय शासक निर्वल हो गये थे; जिससे आन्तरिक द्वेष और समान्तों ने विद्रोह उत्पन्न कर दिया था। रामपाल के निधन के बाद गहड़वालों ने बिहार में शाहाबाद और गया तक विस्तार कर लिया था। सेन शासकों, वल्लासेन और विजयसेन ने भी अपनी सत्ता का विस्तार किया। इस तरह एक आर फिर से अराजकता का माहौल बन गया और इसी परिवेश में तुर्को का आक्रमण प्रारम्भ हो गया।

पाल शासन का महत्व

भारत के उन राजवंशों के इतिहास में पाल वंश का शासन–काल काफी महत्वपूर्ण हैं जिनहोने सबसे अधिक दिनों तक राज्य किया। पाल नरेशों ने चार शताब्दियों तक बंगाल और उसके आस–पस के क्षेत्रों पर शासन किया। धर्मपाल और देवपाल के शासनकाल का समय एक शताब्दि से अधिक का था। उन्होने इस सुदीर्घकालीन शासन में बंगाल को उत्तर भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली राज्यों में से एक बना दिया। साम्राज्य सत्ता के लिए उत्तर भारत में जिन तीन राजनैतिक शक्तियों में संघर्ष हुआ उसमें से एक शक्ति पालों की भी थी। धर्मपाल और देवपाल के उत्तराधिकारियों के समय में यद्यपि पालों की शक्ति वैसी नहीं रही तथापि उनका राज्य इस समय भी उपेक्षित नहीं था। जिस समय पाल साम्राज्य अपने उत्कर्ष की स्थिति में नहीं था। उस समय भी इसका प्रभाव दूर दूर तक के प्रान्तों पर रहा था। पर पालों का शासन राजनैतिक दृष्टिकोण की अपेक्षा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रोफेसर एन.ए. घोष के शब्दों में पाल शासन के अन्तर्गत न केवल बंगाल की गणना सबसे बढ़ी–चढ़ी शक्तियों के अन्तर्गत में की जाने लगी, अपितु वह बौद्धिक और कला सम्बन्धी क्षेत्रों में उत्कृष्ट हो गया। प्रसिद्ध चित्रकार, शिल्पी एवं कांस्य की प्रतिमा गढ़ने वाले धीमन् और वित्पाल पाल साम्राज्य में ही राज्याश्रय पाकर अपनी कला के निर्माण में संलग्न रहें।

कला के क्षेत्र में पाल नरेशों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान था। उनके शासन–काल में विकसित होने वाली कला–परम्परा की जीवन–शक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसका प्रभाव भारत के बाहर दक्षिण–पूर्वी देशों में भी पहुंचा। नवीं शताब्दी में धीमन् और उसके पुत्र वित्पाल ने चित्रकला की जिस परम्परा को जन्म दिया, वह

ग्यारहवीं शताब्दी में भी जारी रही। यद्यपि पाल युग की बौद्ध कला में कुछ ह्रास के लक्षण भी मौजूद है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय बौद्ध धर्म की अन्तिम छः शताब्दियॉ कलात्मक दृष्टिकोण से पिछड़ा रहा था। सारे बंगाल और बिहार में पाल नरेशों ने चैत्यों, विहारों, मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण कराया। अभाग्यवश उस काल की इमारत कोई बची न रह सकी परन्तु उसकी वृहत् संख्या सुरक्षित हैं। जिससे पाल राजाओं की निर्माण–सक्रियता का पता चलता है।

पालों की शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण देने थी। ओदन्तपुरी और विक्रमशीला के विश्वविद्यालयों की स्थापना पाल–नरेशें ने ही की थी। नालन्दा की भांति इन विश्वविद्यालयों का यश के दूरवर्ती भागों तक फैला हुआ था और दूर–दूर के विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए यहां आया करते थे। शिक्षा के संरक्षण और प्रसार में इन बौद्ध विश्वविद्यालयों का काफी महत्वपूर्ण योगदान था। दो–एक नरेशों को छोड़कर शेष सभी पाल राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। उन्होने बौद्ध धर्म को उस समय राज्याश्रय प्रदान किया जिस समय देश के अधिकांश क्षेत्रों में यह पतनोन्मुख था। पाल शासकों ने अपने बौद्ध धर्म के प्रचार का पूरा प्रयत्न किया परन्तु उनका धार्मिक दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था। वे ब्राह्मणों को भी दान–दक्षिणा देकर सम्मानित करते थे। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अतीश नामक प्रसिद्ध दार्शनिक भिक्षु ने तिब्बत की यात्रा की थी। पालों के शासन–काल में साहित्य की उन्नति उतनी अधिक तो नहीं हुई जितनी कला की किन्तु, सन्ध्याकर नन्द का रामपालचरित नामक संश्लेशात्मक महाकाव्य इसी समय लिखा गया। लोकेश्वर शतक नामक काव्य की रचना बौद्ध कवि वज्रदत ने देवापाल के समय में की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत के संरक्षण और विकास की दृष्टि से भी पालों का शासनकान काफी महत्वपूर्ण था। पाल शासककाल में बौद्ध धर्म के उस सम्प्रदाय–तान्त्रिक का भी विकास हुआ जो बंगाल के शक्ति कल्ट के संयोग से बना था। हालांकि कुछ विद्वान उसे बौद्धधर्म को भारतवर्ष में लोप का भी कारण मानते हैं, लेकिन यह पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता हैं। आतिस दीपांकर जैसे विद्वान भी इसी काल में हुए थे। जिनको पाल राज्याश्रय का योग मिला।

पाल साम्रज्य का पतन

पाल साम्राज्य की स्थिति रामपाल के बाद और अधिक डावाडोल हो गई। उसके पुत्र कुमारपाल के समय में असम स्वतंत्र हो गया। इस तरह पाल नरेश नाममात्र के ही राजा रह गये। सेन वंशों के उत्कर्ष, सामान्तों के विद्रोह और परवर्ती पाल नरेशों की अयोग्यता के कारण पालों के साम्राज्य का पतन हो गया। पाल साम्राज्य के पतन का सबसे अधिक प्रभाव बौद्धधर्म पर पड़ा। उसे समुचित राजाश्रय प्राप्त नहीं हो सका तथा इसके अभाव में बौद्ध धर्म अपने सबसे खराब स्थिति को प्राप्त हुआ था।

उपसंहार–

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत के संरक्षण और विकास की दृष्टि से भी पालों का शासनकान काफी महत्वपूर्ण था। पाल शासककाल में बौद्ध धर्म के उस सम्प्रदाय–तान्त्रिक का भी विकास हुआ जो बंगाल के शक्ति कल्ट के संयोग से बना था। और कुछ विद्वानों का मत है कि बौद्धधर्म को भारतवर्ष में लोप का भी कारण मानते हैं। पाल साम्राज्य की स्थिति रामपाल के बाद और अधिक खराब हो गई जिसके बाद सेन वंशों के उत्कर्ष, सामान्तों के विद्रोह और परवर्ती पाल नरेशों की उदासीनता के कारण पाल साम्राज्य का अन्त हो गया। उपर्युक्त

घटनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि कोई भी शासन व्यवस्था अगर उदासीनता वाला व्यवहार अपनाती है और शासन प्रशासन पर पर्याप्त ध्यान नही देती तो उस शासन का पतन निश्चित होता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचिः–

1 मत्स्यन्यायमपोहितु प्रकृतिभिर्लक्ष्याः इदं आहितः।
श्री गोपाल इति क्षितीशशिरसां चूडामणिस्तसुतः।। जिल्द 4, श्लोक 4, पृ0 248
मतस्यन्याय की अवस्था, डॉ0 बलदेव तारनाथ भी करता है। एड0, जिल्द 4, पृ0 366
2 शैलेन्द्र नाथ सेन (1999), प्राचीन भारत और सभत्यता, न्यू ऐज इन्टरनेशनल।
3 आर.सी. मजूमदार (1997), प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसी दास
4 भार्गव, पीयुस (1996), पाल शासकों के राजत्वकाल में बौद्धधर्म एवं बौद्धकला, लखनऊ : भारत बुक सेन्टर
5 पाण्डेयः गोविन्दचन्द्र (1975), बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ : हिन्दी समिति, भारत
6 श्री हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' (1960), बौद्धधर्म और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
7 डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक (1973), उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, इण्डियन यूनिवर्सिटीज, इलाहाबाद।

****